**ओ३म्**

**‘आर्यसमाज की स्थापना और इसके नियमों पर एक दृष्टि’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) उन्नीसवीं शताब्दी के समाज व धर्म-मत सुधारकों में अग्रणीय महापुरुष हैं। उन्होंने 10 अप्रैल सन् 1875 ई. (चैत्र शुक्ला 5 शनिवार सम्वत् 1932 विक्रमी) को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इससे पूर्व उन्होंने 6 या 7 सितम्बर, 1872 को वर्तमान बिहार प्रदेश के **‘आरा’** स्थान पर आगमन पर भी वहां आर्यसमाज स्थापित किया था। उपलब्ध इतिहास व जानकारी के अनुसार यह प्रथम आर्यसमाज था। महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी के लेखक पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित जीवन चरित में इस विषय में उल्लेख है कि **’नगर के सभी सम्भ्रान्त पुरुष महाराज के दर्शनार्थ आते थे और सन्ध्या-समय उनके पास अच्छी भीड़ लग जाती थी। स्वामीजी ने आरा में एक सभा की भी स्थापना की थी जिसका उद्देश्य आर्यधर्म और रीति-नीति का संस्कार करना था, परन्तु उसके एक-दो ही अधिवेशन हुए। स्वामी जी के आरा से चले जाने के पश्चात् थोड़े ही दिन में उसकी समाप्ती (गतिविधियां बन्द) हो गई।’** जिन दिनों आर्यसमाज आरा की स्थापना हुई, तब न तो सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित हुआ था और न हि संस्कारविधि, आर्याभिविनय वा अन्य किसी प्रमुख ग्रन्थ की रचना ही हुई थी। आरा में स्वामीजी का प्रवास मात्र 1 या 2 दिनों का होने के कारण आर्यसमाज के नियम आदि भी नहीं बनाये जा सके थे। यहां से स्वामीजी पटना आ गये थे और यहां 25 दिनों का प्रवास किया था। आरा में स्वामीजी ने पं. रुद्रदत्त और पं. चन्द्रदत्त पौराणिक मत के पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया था। प्रसंग उठने पर आपने बताया था कि सभी **‘पुराण’** ग्रन्थ वंचक लोगों के रचे हुए हैं। आरा में स्वामी जी के दो व्याख्यान हुए जिनमें से एक यहां के गवर्नमेंट स्कूल के प्रांगण में हुआ था। **व्याख्यान वैदिक धर्म विषय पर था जिसमें बोलते हुए स्वामी जी ने कहा था कि प्रचलित हिन्दू-धर्म और रीति-रिवाज वेदानुमोदित नहीं हैं, प्रतिमा-पूजा वेद-प्रतिपादित नहीं है, विधवा विवाह वेद-सम्मत और बाल-विवाह वेदविरुद्ध है। व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा था कि गुरु-दीक्षा करने की रीति आधुनिक है तथा मन्त्र देने का अर्थ कान में फूंक मारने का नहीं है, जैसा कि दीक्षा देने वाले गुरू करते थे।**

 स्वामी दयानन्द जी ने 31 दिसम्बर 1874 से 10 जनवरी 1875 तक राजकोट में प्रवास कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। यहां जिस कैम्प की धर्मशाला में स्वामी ठहरे, वहां उन्होंने आठ व्याख्यान दिये जिनके विषय थे **ईश्वर, धर्मोदय, वेदों का अनादित्व और अपौरुषेयत्व, पुनर्जन्म, विद्या-अविद्या, मुक्ति और बन्ध, आर्यों का इतिहास और कर्तव्य।** यहां स्वामीजी ने पं. महीधर और जीवनराम शास्त्री से मूर्तिपूजा और वेदान्त-विषय पर शास्त्रार्थ भी किया। स्वामीजी का यहां राजाओं के पुत्रों की शिक्षा के कालेज, राजकुमार कालेज में एक व्याख्यान हुआ। उपदेश का विषय था **‘‘अंहिसा परमो धर्म”।** यहां स्कूल की ओर से स्वामीजी को प्रो. मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद भेंट किया गया था। राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना के विषय में पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित में निम्न विवरण प्राप्त होता है-**‘स्वामीजी ने यह प्रस्ताव किया कि राजकोट में आर्यसमाज स्थापित किया जाए और प्रार्थना-समाज को ही आर्यसमाज में परिणत कर दिया जाए। प्रार्थना-समाज के सभी लोग इस प्रस्ताव से सहमत हो गये। वेद के निभ्र्रान्त होने पर किसी ने आपत्ति नहीं की। स्वामीजी के दीप्तिमय शरीर और तेजस्विनी वाणी का लोगों पर चुम्बक जैसा प्रभाव पड़ता था। वह सबको नतमस्तक कर देता था। आर्यसमाज स्थापित हो गया, मणिशंकर जटाशंकर और उनकी अनुपस्थियों में उत्तमराम निर्भयराम प्रधान का कार्य करने के लिए और हरगोविन्ददास द्वारकादास और नगीनदास ब्रजभूषणदास मन्त्री का कर्तव्य पालन करने के लिए नियत हुए।’** आर्यसमाज के नियमों के विषय में इस जीवन-चरित में लिखा है कि **‘स्वामीजी ने आर्यसमाज के नियम बनाये, जो मुद्रित कर लिये गये। इनकी 300 प्रतियां तो स्वामीजी ने अहमदाबाद और मुम्बई में वितरण करने के लिए स्वयं रख लीं और शेष प्रतियां राजकोट और अन्य स्थानों में बांटने के लिए रख ली गई जो राजकोट में बांट दी र्गइं, शेष गुजरात, काठियावाड़ और उत्तरीय भारत के प्रधान नगरों में भेज दी गईं। उस समय स्वामी जी की यह सम्मति थी कि प्रधान आर्यसमाज अहमदाबाद और मुम्बई में रहें। आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन प्रति आदित्यवार को होने निश्चित हुए थे।’** यह ध्यातव्य है कि राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना पर बनाये गये नियमों की संख्या 26 थी। इनमें से 10 नियमों को आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

 इसके बाद मुम्बई में 10 अप्रैल, सन् 1875 को आर्यसमाज की स्थापना हुई। इससे सम्बन्धित विवरण पं. लेखराम रचित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र से प्रस्तुत है। वह लिखते हैं कि ‘स्वामीजी के गुजरात की ओर चले जाने से आर्यसमाज की स्थापना का विचार जो बम्बई वालों के मन में उत्पन्न हुआ था, वह ढीला हो गया था परन्तु अब स्वामी जी के पुनः आने से फिर बढ़ने लगा और अन्ततः यहां तक बढ़ा कि कुछ सज्जनों ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे कुछ भी हो, बिना (आर्यसमाज) स्थापित किए हम नहीं रहेंगे। स्वामीजी के लौटकर आते ही फरवरी मास, सन् 1875 में गिरगांव के मोहल्ले में एक सार्वजनिक सभा करके स्वर्गवासी रावबहादुर दादू बा पांडुरंग जी की प्रधानता में नियमों पर विचार करने के लिए एक उपसभा नियत की गई। परन्तु उस सभा में भी कई एक लोगों ने अपना यह विचार प्रकट किया कि अभी समाज-स्थापन न होना चाहिये। ऐसा अन्तरंग विचार होने से वह प्रयत्न भी वैसा ही रहा (आर्यसमाज स्थापित नहीं हुआ)।’ इसके बाद पं. लेखराम जी लिखते हैं, **‘और अन्त में जब कई एक भद्र पुरुषों को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब समाज की स्थापना होती ही नहीं, तब कुछ धर्मात्माओं ने मिलकर राजमान्य राज्य श्री पानाचन्द आनन्द जी पारेख को नियत किए हुए नियमों (राजकोट में निर्धारित 26 नियम) पर विचारने और उनको ठीक करने का काम सौंप दिया। फिर जब ठीक किए हुए नियम स्वामीजी ने स्वीकार कर लिए, तो उसके पश्चात् कुछ भद्र पुरुष, जो आर्यसमाज स्थापित करना चाहते थे और नियमों को बहुत पसन्द करते थे, लोकभय की चिन्ता न करके, आगे धर्म के क्षेत्र में आये और चैत्र सुदि 5 शनिवार, संवत् 1932, तदनुसार 10 अप्रैल, सन् 1875 को शाम के समय, मोहल्ला गिरगांव में डाक्टर मानक जी के बागीचे में, श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी.ए., एल.एल.बी. की प्रधानता में एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें यह नियम (28 नियम) सुनाये गये और सर्वसम्मति से प्रमाणित हुए और उसी दिन से आर्यसमाज की स्थापना हो गई।’**

 हम अनुमान करते हैं कि पाठक आर्यसमाज के उन 28 नियमों को अवश्य जानने को उत्सुक होंगे जो मुम्बई में स्थापना के अवसर पर स्वीकार किये गये थे। यदि इन सभी नियमों को प्रस्तुत करें तो लेख का आकार बहुत बढ़ जायेगा अतः चाहकर भी हम केवल 10 नियम ही दे रहे हैं। पाठकों से निवेदन है कि वह इन नियमों को पं. लेखराम रचित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित में देख लें। महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञान के दूसरे भाग में तृतीय परिशिष्ट के रूप में यह 28 नियम महर्षि दयानन्द कृत हिन्दी व्याख्या सहित दिये गये हैं। वहां इन्हें देख कर भी लाभ उठाया जा सकता है। 28 में से प्रथम 10 नियम हैं। 1-सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है। 2-इस समाज में मुख्य स्वतःप्रमाण वेदों का ही माना जायेगा। साक्षी के लिए तथा वेदों के ज्ञान के लिए और इसी प्रकार आर्य-इतिहास के लिए, शतपथ ब्राह्मणादि 4, वेदांग 6, उपवेद 4, दर्शन 6 और 1127 शाखा (वेदों के व्याख्यान), वेदों के आर्ष सनातन संस्कृत ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जायगा। 3- इस समाज में प्रति देश के मध्य (में) एक प्रधान समाज होगा और दूसरी शाखा प्रशाखाएं होंगीं। 4- प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी। 5- प्रधान समाज में वेदोक्त अनुकूल संस्कृत आर्य भाषा में नाना प्रकार के सत्योपदेश के लिए पुस्तक होंगे और एक **‘आर्यप्रकाश’** पत्र यथानुकूल आठ-आठ दिन में निकलेगा। यह सब समाज में प्रवृत्त किये जायेंगे। 6-प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष, और दूसरा मंत्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री, यह सब सभासद् होंगे। 7- प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था का पालन करेगा और मंत्री सबके पत्र का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा। 8- इस समाज में सत्पुरुष सत्-नीति सत्-आचरणी मनुष्यों के हितकारक समाजस्थ (सदस्य बन सकेंगे) किये जायेंगे। 9- जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होय सो जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य इस समाज की उन्नति ही करे, अन्यथा नहीं। 10- प्रत्येक आठवें दिन प्रधान मंत्री और सभासद् समाज स्थान में एकत्रित हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

 28 नियमों के बाद पं. लेखराम जी लिखते हैं कि फिर अधिकारी नियत किये गए। तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल की आर्यसमाज के अधिवेशन होने लगे, परन्तु कुछ मास के पश्चात् शनिवार का दिन सामाजिक पुरुषों के अनुकूल न होने से रविवार का दिन रखा गया जो अब तक है।

 **मुम्बई के बाद लाहौर में स्थापित आर्यसमाज का विशेष महत्व है।** यहां न केवल महर्षि दयानन्द जी द्वारा आर्यसमाज की स्थापना ही की गई अपितु मुम्बई में जो 28 नियम स्वीकार किए गये थे उन्हें संक्षिप्त कर 10 नियमों में सीमित कर दिया गया और 8 सितम्बर, सन् 1877 को उन्हें विज्ञापित भी कर दिया गया। इससे सम्बन्धित विवरण पं. लेखराम रचित जीवन में मिलता है। वहां लिखा है कि ‘विदित हो कि जब स्वामी जी डाक्टर रहीम खां साहब की कोठी (जो नगर के बाहर छज्जू भगत के चैबारे से लगी हुई थी) में उतरे थे, उस समय उन्होंने लोगों को बतलाया कि **आर्यधर्म की उन्नति तभी हो सकती है जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में आर्यसमाज स्थापित हो जावें।** चूंकि स्वामीजी के उपदेशों से लोगों के विचार अपने धर्म पर दृढ़ हो चुके थे, सब लोगों ने इस बात को स्वीकार किया और **24 जून, सन् 1877, रविवार तदनुसार जेठ सुदि 13 संवत् 1934 वि. आषाढ़ 12, संक्रान्ति के दिन लाहौर नगर में आर्यसमाज स्थापित हुआ।** चूंकि इससे पहले बम्बई और पूना में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था और नियम भी निश्चित हो चुके थे किन्तु वे बहुत विस्तृत थे, उन विस्तृत नियमों को पंजाब में यहां के कुछ लोगों के कहने से उनकी सम्मति से स्वामीजी ने संक्षिप्त कर दिया और वे नियम 8 सितम्बर, सन् 1877 के समाचार पत्र **‘खैरख्वाह’** और **‘स्टार आफ इण्डिया’** खंड 12, संख्या 17, पृष्ठ 8 सियालकोट नगर में प्रकाशित हुए। यह संक्षिप्त किये गये 10 नियम वर्तमान में भी प्रचलित हैं। यह नियम हैं, 1-सब सत्यविद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उनका सबका आदिमूल परमेश्वर है। 2-ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। 3-वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। 4- सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। 5- सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें। 6-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। 7- सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये। 8-अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। 9- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। तथा 10-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

 आर्यसमाज लाहौर की स्थापना का आर्यसमाज में उल्लेखनीय स्थान है। इस आर्यसमाज से ही आर्यसमाज को लाला साईं दास, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय और लाला जीवनदास जैसे प्रमुख विद्वान व नेता मिले। गुरुकुल कांगड़ी जैसी विश्व विख्यात राष्ट्रीय शिक्षा संस्था और डी.ए.वी. आन्दोलन में भी आर्यसमाज लाहौर व पंजाबस्थ आर्यसमाजों की ही महत्वपूर्ण भूमिका है। महर्षि दयानन्द जी का पं. लेखराम रचित विस्तृत जीवन चरित भी पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की ही देन है। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद महर्षि के यश व गौरव को बढ़ाने और समाज सुधार व धर्म सुधार व प्रचार का जो कार्य आर्यसमाज लाहौर और पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा ने किया वह इससे पूर्व स्थापित आर्यसमाजों और प्रादेशिक सभाओं से नहीं हो सका। हम आशा करते हैं कि इस लेख से पाठकों को आर्यसमाज की स्थापना और आर्यसमाज के नियमों की इतिहास व निर्णय संबंधी जानकारी मिलेगी। इसी के साथ लेखनी को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001**